अभिमानी विद्वान और विद्यावान विद्वान में अन्तर

आचार्य कविता कांत वाजपेयी, फोन :- 9793774371

रावण के दस सिर हैं। चार वेद और छः शास्त्र दोनों मिलाकर दस हैं। इन्हीं को दस सिर कहा गया है। जिसके सिर में ये दसों भरे हों, वही दसशीश है। हनुमान जी विद्यावान हैं। श्री हनुमान चालीसा के अनुसार –

विद्यावान गुनी अति चातुर। राम काज करिवे को आतुर।।

एक होता है विद्वान और एक विद्यावान। दोनों में आपस में बहुत अन्तर है। इसे हम ऐसे समझ सकते हैं, रावण विद्वान है किन्तु अभिमानी है और हनुमान जी विद्वान तो हैं ही पर विद्यावान भी हैं।

रावण अभिमानी है। जब श्रीराम जी समुद्र पर पुल बनवाकर वानर सेना समेत लंका में डेरा डाल लेते हैं, तब मंदोदरी रावण को समझाती है, किन्तु वह उस सीख को अनसुनी कर देता है, तब वह विचार करती है कि इन्हें अभिमान हो गया है –

मंदोदरीं हृदयँ अस जाना। काल बस्य उपजा अभिमाना।।

(6/8/6)

इसी प्रकार जब अंगद जी श्रीराम जी के दूत बनकर रावण को समझाते हैं, तब सर्वप्रथम वे यही कहते हैं कि अभिमान वश तुमने जगदम्बा सीता का हरण किया है यथा –

नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदंबा।।

(6/20/5)

रावण वास्तव में विद्वान है, लेकिन विडम्बना क्या है? सीता जी का हरण करके ले आया। कई बार विद्वान लोग अपनी विद्वत्ता के कारण दूसरों को शान्ति से नहीं रहने देते। उनका अभिमान दूसरों की सीता रूपी शान्ति का हरण कर लेता है और हनुमान जी उन्हीं खोई हुई सीता रूपी शान्ति को वापिस भगवान से मिलाने हेतु प्रयास करते हैं। हनुमान जी ने रावण से कहा –

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन।।

(5/22/7)

हनुमान जी ने हाथ जोड़कर कहा कि मैं विनती करता हूँ, तो क्या हनुमान जी में बल नहीं है? नहीं, ऐसी बात नहीं है। विनती दोनों करते हैं, पर अंतर है कि एक भय से भरा है दूसरा भाव से भरा है। रावण ने कहा कि तुम क्या, यहाँ देखो कितने लोग हाथ जोड़ कर मेरे सामने खड़े हैं –

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।।

(5/20/7)

यही विद्वान और विद्यावान में अन्तर है। हनुमान जी गये, रावण को समझाने यही विद्वान और विद्यावान का मिलन है। रावण के दरबार में देवता और दिग्पाल भय से हाथ जोड़े खड़े हैं। रावण ने कहा भी–

की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही।।

(5/21/2)

रावण ने कहा – 'तुमने मेरे बारे में सुना नहीं है? तू बहुत निडर दिखता है!'

हनुमान जी बोले – 'क्या यह जरूरी है कि तुम्हारे सामने जो आये वह डरता हुआ आये?'

रावण बोला – 'देख तो, यहाँ जितने देवता और अन्य खड़े हैं वे सब डरकर ही खड़े हैं।'

हनुमान जी बोले – 'उनके डर का कारण है, वे तुम्हारी भृकुटी की ओर देख रहे हैं। **'भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।'** परन्तु मैं भगवान राम की भृकुटी की ओर देखता हूँ। रावण ने पूछा कि उनकी भृकुटी कैसी है? श्री हनुमान जी बोले –

भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई।।

(3/28/4)

जिनकी भृकुटी टेढ़ी हो जाये तो प्रलय हो जाए और उनकी ओर देखने वाले पर स्वप्न में संकट नहीं आए। मैं उन श्रीराम जी की भृकुटी की ओर देखता हूँ। रावण बोला – 'यह विचित्र बात है। जब राम जी की भृकुटी की ओर देखते हो तो हाथ हमारे आगे क्यों जोड़ रहे हो?

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोरि सिखावन।।

(5/22/7)

हनुमान जी बोले – 'यह तुम्हारा भ्रम है। हाथ तो मैं उन्हीं को जोड़ रहा हूँ।' रावण बोला – 'वह यहाँ कहाँ हैं?' हनुमान जी ने कहा कि 'यही समझाने आया हूँ। मेरे प्रभु राम जी ने कहा –

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।

(4/3)

भगवान ने कहा कि सबमें मुझको देखना। इसीलिए मैं तुम्हें नहीं, तुझ में भी अपने भगवान को ही देख रहा हूँ।' इसलिए हनुमान जी कहते हैं –

खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा।।
सब कें देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी।।

(5/22/3–4)

हनुमान जी रावण को प्रभु और स्वामी कहते हैं और रावण श्री हनुमान जी को खल और अधम कहता है –

मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही।।

(5/24/3)

रावण खल और अधम कहकर हनुमान जी को सम्बोधित करता है। यही विद्यावान का लक्षण है कि अपने को गाली देने वाले में भी जिसे भगवान दिखाई दें, वही विद्यावान है।

विद्यावान का लक्षण है – **विद्या ददाति विनयं। विनयाति याति पात्रताम्।।**

पढ़ लिखकर जो 'विनम्र' हो जाये, वह विद्यावान और जो पढ़ लिखकर अकड़ जाये वह विद्वान।

तुलसीदास जी श्रीरामचरितमानस में लिखते हैं –

बरसहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।।

(4/14/3)

जैसे बादल जल से भरने पर नीचे आ जाते हैं, वैसे ही विद्यावान (विचारवान) व्यक्ति विद्या पाकर विनम्र हो जाते हैं। इसी प्रकार हनुमान जी हैं विनम्र और रावण है – विद्वान।

यहाँ प्रश्न उठता है कि विद्वान कौन है?

इसके उत्तर में कहा गया है कि जिसकी दिमागी क्षमता तो बढ़ गयी, परन्तु दिल खराब हो , हृदय में अभिमान हो, वही विद्वान है और अब प्रश्न है कि विद्यावान कौन है?

उत्तर में कहा गया है कि जिसके हृदय में भगवान हो और जो दूसरों के हृदय में भी भगवान को बिठाने की बात करे, वही विद्यावान है।

हनुमान जी ने कहा – 'रावण! और तो ठीक है, पर तुम्हारा दिल ठीक नहीं है। इसका उपचार करा लो। उपचार है –

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू।।

(5/23/1)

अपने हृदय में राम जी को बिठा लो और फिर मजे से लंका में राज करो।

यहाँ हनुमान जी रावण के हृदय में भगवान को बिठाने की बात करते हैं, इसलिए वे विद्यावान हैं, अतः हमें अभिमानी **विद्वान** नहीं, बल्कि विद्वान होकर भी **विद्यावान** बनने का प्रयत्न करना चाहिए। हमें अपनी विद्वत्ता पर अभिमान नहीं करना चाहिए, यह हम तभी कर पायेंगे जब श्री हनुमान जी की रावण को दी गई शिक्षा के अनुसार हम सबमें प्रभु का दर्शन करें। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने कथा के प्रारंभ में ही लिखा है –

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

(1/8/2)

दैनिक जागरण, नई दिल्ली, रविवार 14 अप्रैल 2019

रामकथा सुन भावविभोर हुए श्रोता

महाराज अग्रसेन भवन में श्री रामकथा सुनाते व्यास आचार्य कविता कांत वाजपेयी

सेक्टर-33 स्थित महाराज अग्रसेन भवन में श्री रामकथा सुनते श्रद्धालु • जागरण

जागरण संवाददाता, नोएडा : सेक्टर-33 स्थित महाराज अग्रसेन भवन में श्री रामचरित मानस राष्ट्रीय समिति की ओर से शनिवार को श्री राम जन्मोत्सव का आयोजन किया गया।

कथा व्यास आचार्य कविता कांत वाजपेई ने श्री रामकथा का वर्णन कर वहां मौजूद श्रोताओं को भाव विभोर कर दिया। श्री रामजन्म की पावन बेला में बधाई गीत के साथ श्रोता आनंद से झूमकर नृत्य करने लगे। श्री रामकथा को आगे बढ़ाते हुए कविता कांत वाजपेई ने बताया कि अखिल ब्राह्मण नायक भगवान श्रीराम का अवतार केवल राक्षसों के संहार के लिए नहीं था, बल्कि अपने आचरण द्वारा एक ऐसे समाज की स्थापना का था, जिसमें सभी सुखी हो।

जब हम श्रीराम के आचरण का अनुसरण करेंगे, तभी हम रामराज्य की कल्पना कर सकते हैं। इस अवसर पर समिति की वार्षिक स्मारिका का अंक 26 विमोचित हुआ। स्मारिका के संबंध में पूर्व आईएएस अधिकारी गणेश शंकर त्रिपाठी ने बताया कि इसमें रामचरितमानस पर आधारित ऐसी शोध लेख प्रकाशित है, जो पीएचडी छात्रों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। इस अवसर पर पंडित दिनेश चंद्र शर्मा, महासचिव भगवानदास पटैरया, आनंद स्वरूप शर्मा, जीके गुप्ता, अंकित अवाना, महेंद्र अवाना, जितेंद्र सहित अन्य लोग मौजूद थे।

दैनिक जागरण, नई दिल्ली, शुक्रवार 9 अगस्त 2019

तुलसीदास की जयंती पर काव्य पाठ की प्रस्तुति

सेक्टर-36 स्थित श्रीराम मंदिर में गोस्वामी तुलसीदास की जयंती पर आयोजित कार्यक्रम में भाग लेते लोग • सौजन्य से निवासी

जासं, नोएडा : सेक्टर-36 स्थित श्रीराम मंदिर में गोस्वामी तुलसीदास की जयंती पर श्रीरामचरित मानस राष्ट्रीय समिति एवं गीता रामायण समिति की ओर से कार्यक्रम का आयोजन हुआ। मदर टेरेसा पब्लिक स्कूल के विद्यार्थियों ने गोस्वामी तुलसी दास के जीवन पर काव्य पाठ एवं रामचरित मानस पर प्रस्तुति दी। रामचरित मानस समिति के कार्यकारणी सदस्य वैद्य अच्युत कुमार त्रिपाठी ने बताया कि समिति रामनवमी के शुभ अवसर पर कार्यक्रम का आयोजन करती है।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू

पं0 रामनरेश तिवारी, पिण्डीवासा, प्रयागराज। फोन : 9415443173

आर्य भूमि भगवान की अनेक लीलाओं व क्रियाओं की स्थली रही है। भगवान के सभी अवतारों में भारत भूमि की भूमिका वन्दनीय रही है। इसीलिए अध्यात्म वेत्ताओं, चिन्तकों एवं ऋषियों ने इसी भूखण्ड को अपनी तपस्थली के रूप में चुना है। त्रेतायुग में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम ने अयोध्या, मिथिला नगरी के साथ–साथ चित्रकूट और पंचवटी को अपनी लीला के लिए उपयुक्त स्थल के रूप में वरण किया। इसीलिए जब अयोध्या से वन गमन के लिए भगवान राम भगवती सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ महर्षि वाल्मीकि के पास जाते हैं और उनसे पूछते हैं कि हम कहाँ रहें? तत्व में नित्य स्थित वाल्मीकि जी ने भगवान से संकोच पूर्वक पूछा, "आप हमसे पूछते हैं कि हम कहाँ रहें, लेकिन मैं आप से पूछता हूँ कि आप वह स्थान बतायें जहाँ पर आप न हों?" प्रभु राम ने उन्हें अपनी लीला की भूमिका का संज्ञान कराते हुए बताया कि स्थूल दृष्टि से रहने के लिए आप हमें स्थान बतायें। तब वाल्मीकि जी ने उन्हें निवास के लिए चित्रकूट नामक स्थान बताया जिसका वर्णन श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन पंक्तियों में किया है –

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू।।
सैल सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू।।
नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी।।
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि।।
अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।।
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू।।

(2/132/3–8)

यह सुनकर भगवान राम चित्रकूट जाते हैं और कामद गिरि पर्वत पर पर्णशाला बना कर भगवती सीता के साथ निवास करते हैं। लक्ष्मण जी पास में ही दूसरी पहाड़ी पर, जो अब लक्ष्मण पहाड़ी के नाम से जानी जाती है, निवास करते हुए भगवान राम और सीता जी की रात–दिन सतर्क प्रहरी की तरह रखवाली करते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने वाल्मीकीय रामायण में चित्रकूट का बड़ा ही चित्ताकर्षण वर्णन किया है –

सुरम्यमासाद्य तु चित्रकूटं नदीं च तां माल्यवतीं सुतीर्थां।
ननन्द हृष्टो मृगपक्षिजुष्टां जहौ च दु:खं पुरविप्रवासात्।।

(वा0रा0अयो0 56/35)

अर्थात् चित्रकूट पर्वत बड़ा ही रमणीय था। वहाँ उत्तम तीर्थों (तीर्थस्थान, सीढ़ी और घाटों) से सुशोभित माल्यवती (मन्दाकिनी) नदी बह रही थी, जिसका बहुत से पशु–पक्षी सेवन कर रहे थे। उस नदी और पर्वत का सानिध्य पाकर श्री रामचन्द्र को बड़ा हर्ष एवं आनन्द हुआ। वे नगर से दूर वन में आने के कारण होने वाले कष्ट को भूल गए। इस प्रकार भगवान राम का वहाँ लगभग बारह वर्षों तक वास हुआ। इसी पावन स्थली के रामघाट पर उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास को दर्शन दिया था, जिसके विषय में यह प्रसिद्ध दोहा आज भी स्मरणीय है –

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसीदास चंदन घिसैं तिलक देत रघुबीर॥

इसी प्रवास के दौरान माता सीता को सती अनुसुइया ने स्त्री धर्म की शिक्षा दी थी –

मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बयदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

(3/5/5–7 तथा 10)

रामघाट, स्फटिक शिला, सती अनुसुइया और कामदगिरि, चित्रकूट के चार धाम माने जाते हैं। दीपावली (अमावस्या) तथा प्रत्येक अमावस्या पर लाखों रामभक्त कामदगिरि की परिक्रमा कर आज भी अपने जीवन में राम दर्शन जैसे सुख का अनुभव करते हैं। संभवतः इन्हीं विशेषताओं के कारण वाल्मीकि जी ने लिखा है कि जब मनुष्य चित्रकूट के शिखरों का दर्शन कर लेता है, तब कल्याणकारी पुण्य कर्मों का फल पा लेता है और कभी पाप मन में नहीं लगता है –

यावता चित्रकूटस्य नरः शृंगाण्यवेक्षते।
कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरुते मनः॥

(वा0रा0 अयो0 सर्ग 54 श्लोक 30)

जब श्री भरत लाल जी अपने भाई राम के दर्शनार्थ चित्रकूट जाते हैं, तब कामदगिरि के दर्शन करते ही उनके हृदय में इतना अधिक प्रेम जाग्रत हुआ मानो किसी तपस्वी को अपनी तपस्या का फल प्राप्त हो गया हो। श्रीरामचरितमानस में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है –

राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु॥
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु॥

(2/236)

इसी प्रकार से जब महाराज जनक चित्रकूट में कामदगिरि का दर्शन करते हैं तो वे वहीं से प्रणाम करके रथ से उतर पड़ते हैं और फिर आगे की यात्रा पैदल ही करते हैं। 'राम–दरस' की लालसा से परिश्रम का अनुभव नहीं हो रहा है –

गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं।।
राम दरस लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू।।

(2/275/2–3)

आवागमन के आधुनिक साधन होते हुए भी कई श्रद्धालु राम भक्त अपने निवास से पैदल ही चित्रकूट जाते हैं और कुछ अनूठे राम भक्त ऐसे हैं जो दण्डवत प्रणाम करते हुए कई सप्ताह में चित्रकूट धाम पहुँच पाते हैं।

चित्रकूट को पवित्रता के साथ–साथ प्रकृति का भी अनुपम वरदान प्राप्त हुआ है। मन्थर गति से बहने वाली उज्ज्वल जल–पूरिता मन्दाकिनी, अनुपम वन और हरीतिमा से भरी हुई पर्वतश्रृंखला किसे अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर लेती। रामकथा में भी वे इसी दिव्यता का दर्शन करते हैं। मानस में चित्रकूट की महिमा के प्रसंग में इस कथा का सूत्र इन पंक्तियों में प्रस्तुत किया गया है –

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी।।
सुरसरि धार नाऊँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि।।

(2/132/5–6)

चित्रकूटवासी महर्षि अत्रि के अन्तःकरण में गंगा के प्रति असीम अनुराग था। इसीलिए महातपस्वी पतिपरायणा अनुसुइया ने गंगा की एक धारा मदाकिनी के रूप में चित्रकूट में ही प्रवाहित करने में सफलता प्राप्त की थी, ताकि महर्षि गंगा स्नान चित्रकूट में ही कर सकें। गोस्वामी तुलसीदास जी को समस्त तीर्थों में चित्रकूट सर्वाधिक प्रिय था और ऐसा होना भी स्वाभाविक था, क्योंकि चित्रकूट में ही उनके जीवन में नई दिशा प्राप्त हुई थी, इसलिए भी मानस में चित्रकूट धाम का विशेष महत्व बताया गया है। अयोध्या के भव्य भवनों का परित्याग कर जब श्रीराम चित्रकूट में पधारे, तब वहाँ की वनभूमि ने उन्हें मुग्ध कर दिया। वहाँ निर्मित पर्णकुटी में रहकर वे अयोध्या के आनन्द को भी भूल चुके थे –

क्यों कहौं चित्रकूट गिरि सम्पति महिमा मोद मनोहरताई।
तुलसी जहँ बसि लखन राम सिय आनंद अवधि अवध बिसराई।।

इसी चित्रकूट की वन भूमि को गोस्वामी जी स्नेह वन के रूप में देखते हैं। पूजा के विविध उपकरणों में जब मन्दिर में कोई व्यक्ति भगवान की पूजा करता है, तब उसकी तुलना अयोध्या से की जा सकती है,

किन्तु जब रामकथा के माध्यम से अन्तःकरण में स्नेह का प्रादुर्भाव हो जाता है, तब चित्रकूट की ही भाँति सीताराम श्रोता के अन्तःकरण में वास करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसे श्रीरामचरितमानस में इस प्रकार से लिखा है –

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥

(1/31)

सन्तों का कथन है कि परमात्मा के चिन्तन में उनके नाम, रूप, लीला और धाम चारों समान रूप से सहायक हैं। धाम के रूप में चित्रकूट की प्रतिष्ठा इसी कारण से आज भी समावृत है। चित्रकूट अनादिकाल से पवित्र धाम के रूप में स्थित है और आज भी अपनी पावनता बनाये हुए है। जहाँ भगवान राम और सीता का वास रहा हो वहाँ हनुमान जी की उपस्थिति न हो यह कैसे सम्भव हो सकता है। इसीलिए इसी चित्रकूट में हनुमान धारा नामक पवित्र जगह पर हनुमान जी की नित्य उपस्थिति लोक मानस में स्वीकृत है।

आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥

देवर्षि नारद जी हिमालय की गुफा में गए जहाँ प्राकृतिक सौंदर्य मनभावन था। उसे आश्रम कहा गया है– आश्रम परम पुनीत सुहावा। परमात्मा को प्राप्त करने के लिये सीढ़ी है आश्रम।

चाहे ब्रह्मचर्य आश्रम हो, गृहस्थ आश्रम हो,

वानप्रस्थ आश्रम हो या फिर संन्यास आश्रम हो।

जहाँ रहकर हम सम्यक प्रकार से श्रम करें, अपने कर्त्तव्य पालन के लिये पूर्ण और निष्ठा युक्त परिश्रम करें वह आश्रम है। जहाँ हम स्वयं को तपयुक्त कार्य में संलग्न रखते हैं– वह है आश्रम।

लखन राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तप तन कसहीं॥

जहाँ राम जी वनवास में विराजमान हैं, वह आश्रम है तो यदि घर में भी रहकर भरत जी जिस नियम व्रत पर हैं, वह घर भी आश्रम है अर्थात् आश्रम बनावट, दिखावट और सजावट का नाम नहीं हैं, बल्कि वो तो तपोभूमि है जहाँ रहकर हम परमात्मा की प्राप्ति कर सकते हैं।

खैर ये कलिकाल है, इसलिये जहाँ सारे कुकृत्य होते हैं वहाँ मोटे मोटे अक्षरों में आश्रम लिखा हुआ मिल जाता है, लेकिन आश्रम तो तपोभूमि का नाम है। जहाँ पवित्रता हो उसका नाम है आश्रम। (आश्राम्यन्त्यत्रा, अनेन वा श्रमु तपसि,... स्वधर्म साधर्म साधनक्लेशात्) आश्रम परमपुनीत सुहावा ऐसी विशिष्ट तपोभूमि का नाम है आश्रम। इसलिये वह भले ही पर्वत की गुफा है, लेकिन यहाँ रहकर परमात्मा के ध्यान में लीन रहने के लिये उपयुक्त स्थान है......

कोउ मुख हीन विपुल मुख काहू

राधाकृष्ण पाठक "अतीत", फोन : 8878455227

शब्द की साधना ईश्वर की साधना है, शब्द ईश्वर है, एक विषय का जन्म शब्द सागर की देन है। जब जब मन ने कल्पना–सागर में गोते लगाये, तब तब एक नवीन विषय को जन्म दिया। भावना के गलियारे मुखरित होते शब्द साधना की कोख से जन्मा विषय चेतन मन का राग है। हम किसी विषय के दर्दीले पक्ष पर कितना विचार करते हैं। उसकी गहराई में जाकर समाज को क्या दिशा प्रदान कर सकते हैं। बस यही है साहित्य की सही साधना। केवल कुछ कोरे पन्नों को स्याही से रंग देने से यदि समाज को कुछ हासिल नहीं होता है, तो इसे हम कोरा वाग्विलास ही कहेंगे। हमारा चिंतन और लेखन किसी के बहते आँसू को पोंछ दे, किसी के दर्द भरे घाव की मरहम पट्टी कर दे, किसी बुझे हुए दिल को चलने का साहस प्रदान कर दे, तब ही हमारा लेखन सार्थक है। मुझे श्रीरामचरितमानस की निम्नांकित चौपाई से विकलांगों (दिव्यांगों) के संदर्भ में कुछ लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई –

कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू।।

(1/93/7)

जब हम विकलांग–विमर्श की बात करते हैं, तब हमारे मन–मस्तिष्क में एक भयावह चित्र उत्पन्न हो जाता है। हमारे आस–पास किसी न किसी घर के अंदर एक समाज के द्वारा उपेक्षित असहाय व्यक्तित्व देखने को मिल जाता है। प्रकृति के या शरीर विज्ञान के गुण–सूत्रों के दोषों से उत्पन्न जीव चाहे वह मानव हो, पक्षी हो या अन्यान्य जीव हो अंगहीन–उत्पत्ति का दुःखभोगी इस संसार में रहने वाला प्राणी कहाँ दोषी है। इस प्रकार तमाम प्राणी वर्गों में विकलांगता अभिशाप क्यों बनी हुई है।

दुनिया के समाज शास्त्री, समाज–सेवियों की निगाह जब इस उपेक्षित वर्ग की ओर गई, तब यह महसूस किया गया कि जन्म लेने वाला विकलांग (दिव्यांग) उपेक्षा, अनादर का नहीं, बल्कि सहानुभूति का पात्र है। समाज के विकास में कहीं अलग–थलग पड़ा हुआ है, लेकिन सामान्य मनुष्यों की तरह ही वह समाज का हिस्सा है, इसे साथ लेकर चलना हमारा परम कर्तव्य है और सच्ची मानव सेवा, ईश्वर सेवा है। आज सामाजिक स्तर पर, शासन स्तर पर एवं व्यक्तिगत सेवा के अन्तर्गत तमाम संस्थायें बहुत श्रेष्ठ सेवा का कार्य कर रही हैं तथा इस उपेक्षित वर्ग को न केवल अपने भरण–पोषण के योग्य बना रही हैं, वरन उनके अन्दर छिपी प्रतिभाओं को उजागर कर उनका मनोबल ऊँचा कर रही हैं। आज चाहे शिक्षा का क्षेत्र हो, चाहे नौकरी का क्षेत्र हो, खेल का मैदान हो, युद्ध का मैदान हो, वैज्ञानिक कौशल का क्षेत्र हो, विकलांग किसी सामान्य वर्ग से कहीं पीछे नहीं हैं।

इस विषय के चिन्तन को जब मैंने अध्यात्म एवं हमारी सनातन सभ्यता के आदि प्रणेताओं के प्रारम्भिक प्रसंगों के सन्दर्भ में देखना प्रारम्भ किया, तब मुझे एक नई प्रेरणा–प्रसंग का अनायास ही चिंतन हुआ तथा भगवान शंकर–पार्वती के विवाह में शंकर भगवान की बारात का वर्णन काव्य शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस में पढ़ने पर ऐसा लगा जैसे मुझे विकलांग विमर्श की आधारशिला ही मिल गई हो। भगवान शंकर के भक्त विकलांगों की पराकाष्ठा के उच्चतम उदाहरण हैं यथा –

कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू।।
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना।।
तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें।।
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बने।।

(1/93/7–8 तथा छंद)

क्या उक्त प्रसंग हमें इस बात को सोचने–समझने पर बरबस मजबूर नहीं करता कि भगवान शंकर विकलांगों के पोषक एवं पालनकर्त्ता हैं! समाज में उपेक्षित, तिरस्कृत वर्ग के संरक्षक हैं। अपने विवाह समारोह में शिवजी उन्हीं विकलांग, अति विकलांग वर्ग को साथ लिए जा रहे तनिक भी चिन्ता नहीं कि इस स्वरूप को देखकर हमारी निंदा होगी, विवाह में विघ्न आ सकता है, समाज ने यदि स्वीकारा नहीं तो तिरस्कार सहित बिन ब्याहे ही वापिस होना पड़ सकता है, लेकिन नहीं, जिसे अपना लिया जीवन में जिसके दुख–दर्द को पी लिया फिर चाहे समाज की झूठी मर्यादा ठुकरा दे, परवाह नहीं।

यही है दया और करुणा भाव का सच्चा उदाहरण, दिखावा नहीं। हम यदि किसी कमजोर वर्ग की सेवा का व्रत लेते हैं, तब हमें उनके दर्द को अपना दर्द बनाना पड़ेगा। भगवान शंकर वैभवशाली महादेवता हैं। वैभव उनके आंगन में भीख मांगता है, याचना करता है कि हे प्रभु मुझे अपना कुछ रंग बिखेरने दो, लेकिन भोले भण्डारी जन–जन के सुखकारी नहीं चाहते हैं कि जहां हमारे आंगन में ब्रह्माण्ड के समस्त विकलांग जीवों का डेरा है, वहां यदि इन विकलांग, असहाय, उपेक्षित, दीन–हीन प्राणियों के बीच वैभवपूर्ण जीवन यापन करूँगा, तब इनमें हीन भावना घर कर जायेगी और इनका दैहिक पोषण तो होगा, पर मानसिक और नैतिक पोषण नहीं, इसीलिये सभी सुख सुविधाओं को छोड़कर केवल भभूति रमा कर बहुत ही सीधे सरल भाव में रहना स्वीकारा, भगवान शंकर की इस शरणस्थली में ब्रह्माण्ड के न जाने कितने अनगिनत विकलांग जीव निवास करते हैं। हम आज के परिवेश में कहें तो विश्व का ही नहीं, ब्रह्माण्ड का सबसे बड़ा विकलांग सरोवर है, जिसमें उन्होंने नाना प्रकार के जीवों को शरण दे रखी है। जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि "कोउ मुख हीन विपुल" ईश्वर की रचना में विज्ञान अभी अधूरा है। बिना मुख का विकलांग शरीर चल रहा है यह आश्चर्य एवं अचम्भे की बात तो लगती है, लेकिन क्या इस

बात को सोचने पर मजबूर नहीं करती कि बिना मुख का भी जीवन जी रहा था, क्या शरीर विज्ञान के लिये चुनौती नहीं है। निश्चित रूप से ऐसी विधियों का, उच्च तकनीकों का विकास हो चुका होगा, जिसके सहारे बिना मुख के विकलांग जीवन जी पा रहे थे।

भगवान शंकर ने जिस प्रकार से प्रकृति में व्याप्त जहर को पीकर मानव मात्र को सुखपूर्वक जीवन जीने के लिये आजाद किया, उसी प्रकार समाज जिसे अपने जीवन का जहर मानता है, उसे अपनाकर हमें नई दिशा प्रदान करनी चाहिए। हमारे पौराणिक ग्रंथ किसी कहानी किस्से के हिस्से नहीं हैं, जीवन की उच्चतम विचारधारा के पोषक हैं। मानव जीवन में आज सही मूल्यों की कमी आ गई है, धार्मिक ग्रंथ हमें नैतिक मूल्य प्रदान करते हैं तथा उनमें वर्णित तथ्य हमारे समाज एवं जीवन को जीने के लिये किसी फार्मूले से कम नहीं हैं। जो आज भी उपेक्षित हैं, बहुत ही थोड़े रूप में समाज में स्वीकारोक्ति आई। अभी बहुत ही बड़े प्रयास की आवश्यकता है। जब तक हमारा समाज उन्हें अपनाकर साथ लेकर चलने का बीड़ा नहीं उठायेगा, हमारी सरकार तथा विश्व के मानस पटल पर उनकी सेवा के लिये कौन बढ़ेगा। आवाज से आवाज मिलानी होगी। विकलांगों के जीवन में रोशनी लानी होगी, हम लिखेंगे, कोई पढ़ेगा।, विचार चलेंगे, सद्भावना बढ़ेगी और उस दर पर पहुंचेगी जहां मानवता हाथ फैलाये बैठी है।

आइये चलें उस ओर जहाँ से चाहत की आवाज आ रही है।

राहुकाल

कोई भी कार्य प्रारम्भ करते समय अथवा यात्रा को प्रारम्भ करते समय यथासंभव यह समय टाल दें। यदि संभव न हो तो ईश्वर का स्मरण करते हुए **'हरिः शरणम्'** अर्थात् हे प्रभु! मैं आपकी शरण में हूँ, इस भाव से कार्य या यात्रा आरम्भ कर सकते हैं। **'सोने में सुहागा होगा'** यदि हर कार्य/यात्रा के पूर्व उपर्युक्त मंत्र कम से कम 3 बार कह लें।

दिन	**राहुकाल का समय**	
रविवार	शाम	04.30 से 06.00 बजे
सोमवार	सुबह	07.30 से 09.00 बजे
मंगलवार	दोपहर	03.00 से 04.30 बजे
बुधवार	दोपहर	12.00 से 01.30 बजे
गुरुवार	दोपहर	01.30 से 03.00 बजे
शुक्रवार	सुबह	10.30 से 12.00 बजे
शनिवार	सुबह	09.00 से 10.30 बजे

देश–विदेश के विभिन्न स्थानों पर सूर्योदय–सूर्यास्त के हिसाब से 5 से 10 मिनट का अंतर हो सकता है।

सेवा की अनोखी विधि

मार्ग चलते मैंने एक बिजली के खम्भे पर एक कागज पर लिखा हुआ पढ़ा, 'मेरा 50 रुपये का नोट इसी रास्ते में गिर गया है, यदि किसी को मिले तो इस पते पर पहुँचाने की कृपा करें। कौतूहलवश मेरे कदम उस कागज पर लिखे पते की ओर बढ़ते गए। उस पते पर पहुँचकर मैंने दरवाजे पर दस्तक दी तो एक वृद्ध बुढ़िया टूटे–फूटे कमरे से बाहर आई। पूछने पर पता चला कि वह अकेली ही रह रही है। वह नोट तो मुझे नहीं मिला था, पर वृद्धा की दशा देखकर मुझे दया आ गई और मैंने जेब से 50 रु0 का एक नोट निकालते हुए कहा कि यह है आपका वह नोट जो मुझे इसी रास्ते में मिला है। उसने नोट तो ले लिया, पर कहा कि वह कागज मैंने नहीं चिपकाया है, मेरी दशा देखकर किसी ने मेरी सहायता के उद्देश्य से ऐसा किया है। इससे अभी तक मुझे पचास–साठ लोग 50 रु0 के नोट दे चुके हैं, अब तुम वह कागज फाड़ देना।

धन्य है उस वृद्धा की ईमानदारी और उस सज्जन की सेवा की अनोखी विधि जिसने वह कागज चिपकाया। दान कैसे भी दिया जाए, कल्याणकारी है। श्रीरामचरितमानस के अनुसार –

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हे दान करइ कल्यान।।

(7 / 103 ख)

शोक समाचार

हमें अत्यंत दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि इस समिति के सम्माननीय वरिष्ठ सदस्य **श्री विशम्बर दयाल शर्मा** रविवार, आषाढ शुक्ल पंचमी संवत् 2076 तदनुसार 07 जुलाई सन् 2019 को चिर निद्रा में लीन हो गए। इस समिति की ओर से हम उनकी आत्मा की शान्ति के लिए तथा उनके परिजनों एवं मित्रों को धैर्य प्रदान करने हेतु परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

शोक समाचार

हमें अत्यंत दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि इस समिति के सचिव **डॉ0 रविन्द्र कुमार शर्मा** की माता जी सोमवार, फाल्गुन कृष्ण नवमी संवत् 2076 तदनुसार 09 फरवरी सन् 2020 को चिर निद्रा में लीन हो गईं। इस समिति की ओर से हम उनकी आत्मा की शान्ति के लिए तथा उनके परिजनों एवं मित्रों को धैर्य प्रदान करने हेतु परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु

श्रीमती कुसुम पटैरया, सदस्य

सीता जी की खोज के लिए श्रीराम जी हनुमान जी को अपनी मुद्रिका देकर भेजते हैं। इसके पहले सभी वानर यात्रा के लिए तैयार थे। चार टुकड़ियाँ बना दी गई थीं, किन्तु सबसे पीछे हनुमान जी ने श्रीराम जी को प्रणाम किया। उस समय श्रीराम जी ने उनको मुद्रिका दी, क्योंकि उन्होंने समझा कि काम तो इन्हीं को करना है। उन्होंने श्री हनुमान जी को मुद्रिका देते हुए कहा कि तुम सीताजी को मेरा विरह और बल बताकर शीघ्र आ जाना –

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी।।
बहु प्रकार सीतहिं समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु।।

(4 / 23 / 9–11)

अब हनुमान जी अपनी टुकड़ी के साथ में जाते हैं। इसका नेतृत्व तो जाम्बवंत जी के मार्गदर्शन में अंगद कर रहे थे। एक बार मार्ग के सघन वन में सबको बहुत प्यास लगी। तब हनुमान जी ने एक शिखर के ऊपर चढ़कर देखा कि एक गुफा में से कुछ पक्षी निकल रहे हैं। उन्होंने विचार किया कि वहाँ जल अवश्य होगा। वे सबको उस गुफा में ले जाते हैं। वहाँ पर एक तपस्विनी तपस्या कर रही थीं। उनकी आज्ञा से सबने जलपान किया, मधुर फल खाए और तपस्विनी के अनुसार सबने अपने नयन मूँद लिए और जब नेत्र खोले तो वे समुद्र के किनारे पहुँच गए। वहाँ पर सम्पाती ने देखा कि बहुत से बंदर हैं, आज तो एक साथ भोजन मिल गया। इस वचन को सुनकर अंगद जी कहते हैं– **'धन्य जटायू सम कोउ नाहीं।'** जटायु की बात सुनकर सम्पाती ने अपनी पूरी कथा बताई और कहा कि तुम सीताजी को निश्चित रूप से खोज लोगे, किन्तु जो इस सौ योजन सागर को लाँघ कर जाएगा, वही सीता जी तक पहुँच सकता है। मैं देख रहा हूँ कि सीताजी लंका में अशोक वृक्ष के नीचे चिंतामग्न बैठी हुई हैं। तब वानरों ने अपना–अपना बल बताया, पर कोई भी समुद्र पार जाने में समर्थ नहीं हुआ। हनुमान जी हमेशा राम नाम में मस्त रहते हैं। उन्हें कोई सुध नहीं रहती है, कोई उन्हें सुधि दिलाए तो आती है, अन्यथा वे तो राम नाम में ही मस्त रहते हैं। तब जाम्बवंत जी उन्हें रामकाज का स्मरण कराते हैं। तत्पश्चात श्री हनुमान जी समुद्र पार कर लंका में जाते हैं और घर–घर सीताजी की खोज करते हैं– **'मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा'**, लेकिन वहाँ सीताजी नहीं दिखाई दीं। फिर वे रावण के महल में ढूंढ़ते हैं, वहाँ भी सीताजी नहीं मिलती हैं। वे सोचते हैं अब क्या किया

सीता जी की खोज के लिए श्रीराम जी हनुमान जी को अपनी मुद्रिका देकर भेजते हैं। इसके पहले सभी वानर यात्रा के लिए तैयार थे। चार टुकड़ियाँ बना दी गई थीं, किन्तु सबसे पीछे हनुमान जी ने श्रीराम जी को प्रणाम किया। उस समय श्रीराम जी ने उनको मुद्रिका दी, क्योंकि उन्होंने समझा कि काम तो इन्हीं को करना है। उन्होंने श्री हनुमान जी को मुद्रिका देते हुए कहा कि तुम सीताजी को मेरा विरह और बल बताकर शीघ्र आ जाना –

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी।।
बहु प्रकार सीतहिं सुमझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु।।

(4/23/9–11)

अब हनुमान जी अपनी टुकड़ी के साथ में जाते हैं। इसका नेतृत्व तो जाम्बवंत जी के मार्गदर्शन में अंगद कर रहे थे। एक बार मार्ग के सघन वन में सबको बहुत प्यास लगी। तब हनुमान जी ने एक शिखर के ऊपर चढ़कर देखा कि एक गुफा में से कुछ पक्षी निकल रहे हैं। उन्होंने विचार किया कि वहाँ जल अवश्य होगा। वे सबको उस गुफा में ले जाते हैं। वहाँ पर एक तपस्विनी तपस्या कर रही थीं। उनकी आज्ञा से सबने जलपान किया, मधुर फल खाए और तपस्विनी के अनुसार सबने अपने नयन मूँद लिए और जब नेत्र खोले तो वे समुद्र के किनारे पहुँच गए। वहाँ पर सम्पाती ने देखा कि बहुत से बंदर हैं, आज तो एक साथ भोजन मिल गया। इस वचन को सुनकर अंगद जी कहते हैं– **'धन्य जटायू सम कोउ नाहीं।'** जटायु की बात सुनकर सम्पाती ने अपनी पूरी कथा बताई और कहा कि तुम सीताजी को निश्चित रूप से खोज लोगे, किन्तु जो इस सौ योजन सागर को लाँघ कर जाएगा, वही सीता जी तक पहुँच सकता है। मैं देख रहा हूँ कि सीताजी लंका में अशोक वृक्ष के नीचे चिंतामग्न बैठी हुई हैं। तब वानरों ने अपना–अपना बल बताया, पर कोई भी समुद्र पार जाने में समर्थ नहीं हुआ। हनुमान जी हमेशा राम नाम में मस्त रहते हैं। उन्हें कोई सुध नहीं रहती है, कोई उन्हें सुधि दिलाए तो आती है, अन्यथा वे तो राम नाम में ही मस्त रहते हैं। तब जाम्बवंत जी उन्हें रामकाज का स्मरण कराते हैं। तत्पश्चात श्री हनुमान जी समुद्र पार कर लंका में जाते हैं और घर–घर सीताजी की खोज करते हैं– **'मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा'**, लेकिन वहाँ सीताजी नहीं दिखाई दीं। फिर वे रावण के महल में ढूंढ़ते हैं, वहाँ भी सीताजी नहीं मिलती हैं। वे सोचते हैं अब क्या किया जाए? उसी समय उनको राम नाम अंकित एक भवन दिखाई दिया और वे विचार करते हैं –

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा।।
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा।।
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी।।

सीता जी की खोज के लिए श्रीराम जी हनुमान जी को अपनी मुद्रिका देकर भेजते हैं। इसके पहले सभी वानर यात्रा के लिए तैयार थे। चार टुकड़ियाँ बना दी गई थीं, किन्तु सबसे पीछे हनुमान जी ने श्रीराम जी को प्रणाम किया। उस समय श्रीराम जी ने उनको मुद्रिका दी, क्योंकि उन्होंने समझा कि काम तो इन्हीं को करना है। उन्होंने श्री हनुमान जी को मुद्रिका देते हुए कहा कि तुम सीताजी को मेरा विरह और बल बताकर शीघ्र आ जाना –

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी।।
बहु प्रकार सीतहिं सुमझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु।।

(4/23/9–11)

अब हनुमान जी अपनी टुकड़ी के साथ में जाते हैं। इसका नेतृत्व तो जाम्बवंत जी के मार्गदर्शन में अंगद कर रहे थे। एक बार मार्ग के सघन वन में सबको बहुत प्यास लगी। तब हनुमान जी ने एक शिखर के ऊपर चढ़कर देखा कि एक गुफा में से कुछ पक्षी निकल रहे हैं। उन्होंने विचार किया कि वहाँ जल अवश्य होगा। वे सबको उस गुफा में ले जाते हैं। वहाँ पर एक तपस्विनी तपस्या कर रही थीं। उनकी आज्ञा से सबने जलपान किया, मधुर फल खाए और तपस्विनी के अनुसार सबने अपने नयन मूँद लिए और जब नेत्र खोले तो वे समुद्र के किनारे पहुँच गए। वहाँ पर सम्पाती ने देखा कि बहुत से बंदर हैं, आज तो एक साथ भोजन मिल गया। इस वचन को सुनकर अंगद जी कहते हैं– **'धन्य जटायू सम कोउ नाहीं।'** जटायु की बात सुनकर सम्पाती ने अपनी पूरी कथा बताई और कहा कि तुम सीताजी को निश्चित रूप से खोज लोगे, किन्तु जो इस सौ योजन सागर को लाँघ कर जाएगा, वही सीता जी तक पहुँच सकता है। मैं देख रहा हूँ कि सीताजी लंका में अशोक वृक्ष के नीचे चिंतामग्न बैठी हुई हैं। तब वानरों ने अपना–अपना बल बताया, पर कोई भी समुद्र पार जाने में समर्थ नहीं हुआ। हनुमान जी हमेशा राम नाम में मस्त रहते हैं। उन्हें कोई सुध नहीं रहती है, कोई उन्हें सुधि दिलाए तो आती है, अन्यथा वे तो राम नाम में ही मस्त रहते हैं। तब जाम्बवंत जी उन्हें रामकाज का स्मरण कराते हैं। तत्पश्चात श्री हनुमान जी समुद्र पार कर लंका में जाते हैं और घर–घर सीताजी की खोज करते हैं– **'मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा'**, लेकिन वहाँ सीताजी नहीं दिखाई दीं। फिर वे रावण के महल में ढूंढ़ते हैं, वहाँ भी सीताजी नहीं मिलती हैं। वे सोचते हैं अब क्या किया जाए? उसी समय उनको राम नाम अंकित एक भवन दिखाई दिया और वे विचार करते हैं –

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा।।
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा।।
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी।।

सीता जी की खोज के लिए श्रीराम जी हनुमान जी को अपनी मुद्रिका देकर भेजते हैं। इसके पहले सभी वानर यात्रा के लिए तैयार थे। चार टुकड़ियाँ बना दी गई थीं, किन्तु सबसे पीछे हनुमान जी ने श्रीराम जी को प्रणाम किया। उस समय श्रीराम जी ने उनको मुद्रिका दी, क्योंकि उन्होंने समझा कि काम तो इन्हीं को करना है। उन्होंने श्री हनुमान जी को मुद्रिका देते हुए कहा कि तुम सीताजी को मेरा विरह और बल बताकर शीघ्र आ जाना –

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी।।
बहु प्रकार सीतहिं सुमझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु।।

(4/23/9–11)

अब हनुमान जी अपनी टुकड़ी के साथ में जाते हैं। इसका नेतृत्व तो जाम्बवंत जी के मार्गदर्शन में अंगद कर रहे थे। एक बार मार्ग के सघन वन में सबको बहुत प्यास लगी। तब हनुमान जी ने एक शिखर के ऊपर चढ़कर देखा कि एक गुफा में से कुछ पक्षी निकल रहे हैं। उन्होंने विचार किया कि वहाँ जल अवश्य होगा। वे सबको उस गुफा में ले जाते हैं। वहाँ पर एक तपस्विनी तपस्या कर रही थीं। उनकी आज्ञा से सबने जलपान किया, मधुर फल खाए और तपस्विनी के अनुसार सबने अपने नयन मूँद लिए और जब नेत्र खोले तो वे समुद्र के किनारे पहुँच गए। वहाँ पर सम्पाती ने देखा कि बहुत से बंदर हैं, आज तो एक साथ भोजन मिल गया। इस वचन को सुनकर अंगद जी कहते हैं– **'धन्य जटायू सम कोउ नाहीं।'** जटायु की बात सुनकर सम्पाती ने अपनी पूरी कथा बताई और कहा कि तुम सीताजी को निश्चित रूप से खोज लोगे, किन्तु जो इस सौ योजन सागर को लाँघ कर जाएगा, वही सीता जी तक पहुँच सकता है। मैं देख रहा हूँ कि सीताजी लंका में अशोक वृक्ष के नीचे चिंतामग्न बैठी हुई हैं। तब वानरों ने अपना–अपना बल बताया, पर कोई भी समुद्र पार जाने में समर्थ नहीं हुआ। हनुमान जी हमेशा राम नाम में मस्त रहते हैं। उन्हें कोई सुध नहीं रहती है, कोई उन्हें सुधि दिलाए तो आती है, अन्यथा वे तो राम नाम में ही मस्त रहते हैं। तब जाम्बवंत जी उन्हें रामकाज का स्मरण कराते हैं। तत्पश्चात श्री हनुमान जी समुद्र पार कर लंका में जाते हैं और घर–घर सीताजी की खोज करते हैं– **'मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा'**, लेकिन वहाँ सीताजी नहीं दिखाई दीं। फिर वे रावण के महल में ढूंढ़ते हैं, वहाँ भी सीताजी नहीं मिलती हैं। वे सोचते हैं अब क्या किया जाए? उसी समय उनको राम नाम अंकित एक भवन दिखाई दिया और वे विचार करते हैं –

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा।।
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा।।
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी।।

सीता जी की खोज के लिए श्रीराम जी हनुमान जी को अपनी मुद्रिका देकर भेजते हैं। इसके पहले सभी वानर यात्रा के लिए तैयार थे। चार टुकड़ियाँ बना दी गई थीं, किन्तु सबसे पीछे हनुमान जी ने श्रीराम जी को प्रणाम किया। उस समय श्रीराम जी ने उनको मुद्रिका दी, क्योंकि उन्होंने समझा कि काम तो इन्हीं को करना है। उन्होंने श्री हनुमान जी को मुद्रिका देते हुए कहा कि तुम सीताजी को मेरा विरह और बल बताकर शीघ्र आ जाना –

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी॥
बहु प्रकार सीतहिं सुमझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥

(4/23/9–11)

अब हनुमान जी अपनी टुकड़ी के साथ में जाते हैं। इसका नेतृत्व तो जाम्बवंत जी के मार्गदर्शन में अंगद कर रहे थे। एक बार मार्ग के सघन वन में सबको बहुत प्यास लगी। तब हनुमान जी ने एक शिखर के ऊपर चढ़कर देखा कि एक गुफा में से कुछ पक्षी निकल रहे हैं। उन्होंने विचार किया कि वहाँ जल अवश्य होगा। वे सबको उस गुफा में ले जाते हैं। वहाँ पर एक तपस्विनी तपस्या कर रही थीं। उनकी आज्ञा से सबने जलपान किया, मधुर फल खाए और तपस्विनी के अनुसार सबने अपने नयन मूँद लिए और जब नेत्र खोले तो वे समुद्र के किनारे पहुँच गए। वहाँ पर सम्पाती ने देखा कि बहुत से बंदर हैं, आज तो एक साथ भोजन मिल गया। इस वचन को सुनकर अंगद जी कहते हैं– **'धन्य जटायू सम कोउ नाहीं।'** जटायु की बात सुनकर सम्पाती ने अपनी पूरी कथा बताई और कहा कि तुम सीताजी को निश्चित रूप से खोज लोगे, किन्तु जो इस सौ योजन सागर को लाँघ कर जाएगा, वही सीता जी तक पहुँच सकता है। मैं देख रहा हूँ कि सीताजी लंका में अशोक वृक्ष के नीचे चिंतामग्न बैठी हुई हैं। तब वानरों ने अपना–अपना बल बताया, पर कोई भी समुद्र पार जाने में समर्थ नहीं हुआ। हनुमान जी हमेशा राम नाम में मस्त रहते हैं। उन्हें कोई सुध नहीं रहती है, कोई उन्हें सुधि दिलाए तो आती है, अन्यथा वे तो राम नाम में ही मस्त रहते हैं। तब जाम्बवंत जी उन्हें रामकाज का स्मरण कराते हैं। तत्पश्चात श्री हनुमान जी समुद्र पार कर लंका में जाते हैं और घर–घर सीताजी की खोज करते हैं– **'मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा'**, लेकिन वहाँ सीताजी नहीं दिखाई दीं। फिर वे रावण के महल में ढूंढ़ते हैं, वहाँ भी सीताजी नहीं मिलती हैं। वे सोचते हैं अब क्या किया जाए? उसी समय उनको राम नाम अंकित एक भवन दिखाई दिया और वे विचार करते हैं –

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥

सीता जी की खोज के लिए श्रीराम जी हनुमान जी को अपनी मुद्रिका देकर भेजते हैं। इसके पहले सभी वानर यात्रा के लिए तैयार थे। चार टुकड़ियाँ बना दी गई थीं, किन्तु सबसे पीछे हनुमान जी ने श्रीराम जी को प्रणाम किया। उस समय श्रीराम जी ने उनको मुद्रिका दी, क्योंकि उन्होंने समझा कि काम तो इन्हीं को करना है। उन्होंने श्री हनुमान जी को मुद्रिका देते हुए कहा कि तुम सीताजी को मेरा विरह और बल बताकर शीघ्र आ जाना –

पाछें पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्हि जन जानी।।
बहु प्रकार सीतहिं सुमझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु।।

(4/23/9–11)

अब हनुमान जी अपनी टुकड़ी के साथ में जाते हैं। इसका नेतृत्व तो जाम्बवंत जी के मार्गदर्शन में अंगद कर रहे थे। एक बार मार्ग के सघन वन में सबको बहुत प्यास लगी। तब हनुमान जी ने एक शिखर के ऊपर चढ़कर देखा कि एक गुफा में से कुछ पक्षी निकल रहे हैं। उन्होंने विचार किया कि वहाँ जल अवश्य होगा। वे सबको उस गुफा में ले जाते हैं। वहाँ पर एक तपस्विनी तपस्या कर रही थीं। उनकी आज्ञा से सबने जलपान किया, मधुर फल खाए और तपस्विनी के अनुसार सबने अपने नयन मूँद लिए और जब नेत्र खोले तो वे समुद्र के किनारे पहुँच गए। वहाँ पर सम्पाती ने देखा कि बहुत से बंदर हैं, आज तो एक साथ भोजन मिल गया। इस वचन को सुनकर अंगद जी कहते हैं– **'धन्य जटायू सम कोउ नाहीं।'** जटायु की बात सुनकर सम्पाती ने अपनी पूरी कथा बताई और कहा कि तुम सीताजी को निश्चित रूप से खोज लोगे, किन्तु जो इस सौ योजन सागर को लाँघ कर जाएगा, वही सीता जी तक पहुँच सकता है। मैं देख रहा हूँ कि सीताजी लंका में अशोक वृक्ष के नीचे चिंतामग्न बैठी हुई हैं। तब वानरों ने अपना–अपना बल बताया, पर कोई भी समुद्र पार जाने में समर्थ नहीं हुआ। हनुमान जी हमेशा राम नाम में मस्त रहते हैं। उन्हें कोई सुध नहीं रहती है, कोई उन्हें सुधि दिलाए तो आती है, अन्यथा वे तो राम नाम में ही मस्त रहते हैं। तब जाम्बवंत जी उन्हें रामकाज का स्मरण कराते हैं। तत्पश्चात श्री हनुमान जी समुद्र पार कर लंका में जाते हैं और घर–घर सीताजी की खोज करते हैं– **'मंदिर मंदिर प्रति कर सोधा'**, लेकिन वहाँ सीताजी नहीं दिखाई दीं। फिर वे रावण के महल में ढूंढ़ते हैं, वहाँ भी सीताजी नहीं मिलती हैं। वे सोचते हैं अब क्या किया जाए? उसी समय उनको राम नाम अंकित एक भवन दिखाई दिया और वे विचार करते हैं –

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा।।
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा।।
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी।।

वन्दे वाणी विनायकौ

डॉ0 शंकर शरण तिवारी, झाँसी-284003 फोन :- 9795127788

कविकुल चन्द्र चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास श्रीरामचरितमानस के प्रारम्भ में लिखते हैं –

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ॥

वर्ण, अर्थ समूह, रस और छन्द के कर्त्ता वाणी तथा विनायक की मैं (तुलसी) वन्दना करता हूँ।

मानसारम्भ से पूर्व का यह छन्द मंगलाचरण के रूप में लिखा गया है। महाकाव्य के लक्षण में यह विधान है कि ग्रन्थारम्भ से पूर्व मंगलाचरण की योजना की जानी चाहिए –

मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि च शास्त्राणि
प्रथन्ते वीर पुरुषाण्यायुष्यत्पुरुषाण्य ध्येतारश्च बुद्धियुक्ता
यथा स्युरिति (पातंजल महाभाष्य- अष्टाध्यायी -सूत्र 1/3/1)

अर्थात् जिन शास्त्रों अथवा काव्यों के आरम्भ, मध्य एवं अन्त में मंगलाचरण होता है, उनका प्रचार–प्रखर होता है। ऐसे काव्य वीर एवं आयुष्मान पुरुषों वाले होते हैं तथा उनके पाठक भी बुद्धिमान बनते हैं। यह मंगल–विधान तीन प्रकार का होता है– (1) नमस्कारात्मक (2) आशीर्वादात्मक तथा (3) वस्तु–निर्देशात्मक। प्रथम मंगलाचरण में कवि अपने प्रयोजन (समाप्तिकाओं मंगलमाचरेत्) की सिद्धि के लिए अपने आराध्य देवता की वन्दना करता है, द्वितीय में प्रार्थित देवता की ओर से पाठक या श्रोता को आशीर्वाद दिया जाता है तथा तीसरे में महाकाव्य की वस्तु (कथा) का सूक्ष्म संकेत होता है। तुलसी के उपर्युक्त श्लोक में तीनों प्रकार के मंगल–विधान हैं। वाणी तथा विनायक इन दोनों देवताओं की वन्दना है, अतः नमस्कारात्मक मंगलाचरण है। 'वाणी' शब्द का एक अर्थ 'सीता' तथा 'विनायक' का विशिष्टनायक–राम है, यहाँ इनकी कथा का संकेत है, अतः वस्तु–निर्देश है और ये वाणी तथा विनायक देवतागण, श्रोताओं एवं पाठकों के लिए मंगल का विधान करेंगे, इसलिए यहाँ ऐसा आशीर्वाद भी प्रतीत होता है– यही व्यंग्य है, यही सभी जनों के लिए काम्य भी है।

सर्वप्रथम 'निर्देश' को लें। 'सुन्दरी तंत्र' वाले जानकी सहस्रनाम में भगवती सीता का एक नाम 'वाणी' भी दिया हुआ है –

श्रीरामचरितमानस के अनुसार –

सिव विरंचि सुर जाके सेवक

(6 / 63 / 3)

यदि यह तर्क न माना जाये तो वस्तु निर्देश का एक सुदृढ़ आधार 'व' वर्ण का– वाणी, विनायक तथा मानस के अन्त में प्रयुक्त 'मानवाः' प्राप्त होना बनता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में इस वर्ण को लेकर काव्य–रचना उचित नहीं मानी जाती तो भी 'वस्तु–निर्देश' का आधार बनने के कारण इसे साग्रह स्वीकार किया गया। ऊपर देखा गया कि मंगल–विधान प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त में होना चाहिए। 'व' वर्ण वस्तुतः तन्त्र शास्त्र के अनुसार 'अमृत' का सूचक है। तुलसी ने प्रारम्भ तथा अन्त में इसका प्रयोग करके यह सूचित कर दिया कि मानस में जो जन अवगाहन करेंगे वे संसार रूपी सूर्य के प्रचण्ड उत्ताप से दग्ध नहीं होंगे।

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

(7/अन्त)

अमृत जो प्राप्त कर लेगा, वह दग्ध न होगा क्योंकि अमृत में अमर बना देने का गुण है, परन्तु 'अमृत' की बात केवल सुनी जाती है, यह अनुपलब्ध है।

सुनिअ सुधा देखिहिं गरल सब करतूति कराल।

(2/281)

तुलसी कहते हैं कि अमृत तत्व को समझने के लिए मध्य के सोपान का मंगलाचरण देखना होगा जो 'अमृत' तत्व की अर्थवत्ता का बोध कराता है –

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययम्
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥

(4/मंगलाचरण)

'संसार पतंग' तथा **'संसारामय भेषज'** प्रयोग से यह सिद्ध हो जाता है कि ऐसी औषधि रामनाम ही है। इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने आदि, मध्य तथा अन्त में 'रामनाम' की जयपरिहार्य ग्राह्यता का बोध करा दिया। यहाँ भी वस्तु निर्देश सिद्ध है, कहा भी गया है –

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥

(7/61/6)

'भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक' के अनुसार राम नाम तथा नामी राम में कोई भेद नहीं है। यह राम का नाम अन्य सभी नामों से अधिक श्रेष्ठ है, यह बात नारद जी की वर–याचना से प्रमाणित होती है, वे कहते हैं –

राम सकल नामन्ह ते अधिका। होहु नाथ अघ खग गन बधिका॥

(3 / 42 / 8)

यह नाम श्रेष्ठ इसलिए है कि इसे भाव, कुभाव, अनख तथा आलस्य से भी जप करने पर मंगलकारी है।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(1 / 28 / 1)

इस विषय में यहाँ तीन प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं, जो यह प्रतिपादित करेंगे कि राम नाम सबसे (सब नामों से) श्रेष्ठ है। भगवान शंकर इसे सादर जपते हैं –

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥

(1 / 108 / 7)

वाल्मीकि जी उलटा जपते हैं –

रामु बिहाइ मरा जपतें बिगरी सुधरी कविकोकिलहूकी।

(कवितावली 7 / 89)

परन्तु एक यवन 'हराम' के रूप में इस नाम का उच्चारण कर अयाचित ही परमपद प्राप्त कर लेता है–

आँधरो अधम जड़ जाजरो जराँ जवनु,
सूकरकें सावक ढकाँ ढकेल्यो मगमें।
गिरो हिएँ हहरि 'हराम हो, हराम हन्यो'
हाय! हाय! करत परीगो कालफगमें॥
'तुलसी' बिसोक ह्वै त्रिलोकपतिलोक गयो
नामकें प्रताप, बात बिदित है जग में।

(कवितावली 7 / 76)

विवेच्य मंगलाचरण के द्वारा गोस्वामी जी यह सुझाव देना चाहते हैं कि काव्य में वर्ण–योजना तथा छन्द–योजना का भी महत्त्व होता है। उनसे पूर्व के काव्य शास्त्री यही कहते आये हैं कि काव्य में शब्द, अर्थ, गुण, अलंकार तथा रस की योजना होती है– 'छन्द' तो होता ही है – सिद्ध है। वर्णों के योग से शब्द बनते हैं जो अर्थवान होते हैं, परन्तु काव्य शास्त्रोक्त वर्ण–योजना न होने पर अपेक्षित अर्थ का बोध नहीं हो सकता। माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुणों के लिए भिन्न वर्ण प्रयोग होता है। इसलिए वर्ण भी अपेक्षित काव्य–प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उदाहरणार्थ – माधुर्य गुण की अनुभूति के लिए कोमल वर्ण प्रयोग वाँछनीय हैं। इस संदर्भ में उदाहरण है –

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥

(1 / 230 / 1)

यहाँ कर्ण कटु वर्ण प्रयोग नहीं है, अतः माधुर्य गुण की अनुभूति होती है। 'अर्थ संघ' से अनेक अर्थवाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य, अर्थालंकार गुण–दोष आदि गृहीत हो जाते हैं। वर्ण या शब्द में शब्दालंकार

शब्द शक्तियाँ, गुण आदि समाहित हो जाते हैं, परन्तु गोस्वामी जी ने 'छन्दसाम्' का प्रयोग सोच—समझकर विचारपूर्वक किया है। वे यह जानते थे कि कविता छन्द के बिना नहीं होती, अतः छन्द—योजना स्वतः सिद्ध है। वस्तुतः वे यह द्योतित करना चाहते थे कि 'छन्द' के विशेष गुण के बिना स्थायी रस की अनुभूति नहीं हो सकती। काव्यशास्त्र यही तो कहता है — **'तत्काल विगलित प्रमातृ भाव वशोन्मिषित वेद्यान्तर सम्पर्कशून्यः।** तात्पर्य यह है कि सामान्य काव्य के आस्वादन से जिस रस की अनुभूति होती है, वह स्थायी न होकर क्षणिक होती है। काव्य के पारायण के पश्चात् सहृदय पाठक या भक्त उसी लोक—भूमि पर अवस्थित हो जाता है, जिसमें सत्त्व गुण तो है, पर वह कभी रजोगुण से आक्रान्त है तो कभी तमोगुण से। तुलसी 'छन्दसाम्' पद का प्रयोग साभिप्राय करते हैं। ऐसा अभिप्राय समझने के लिए 'छन्दस्' का धातुगत अर्थ समझना होगा। 'छन्दस्' बना है 'चदि' धातु से— **'चदि आह्लादने दीप्तौ च'** से आह्लाद और दीप्ति के लिए इसका प्रयोग हुआ है। तुलसी चाहते हैं कि उनका काव्य एक तरह से आह्लाद या आनंद की भाव भूमि पर पहुँचा दे, दूसरी ओर इसके वक्ता—श्रोता भी वैसी ही भावधारा में निमग्न हो जाएँ और इस आनन्दात्मक भावधारा का प्रवाह तात्कालिक न रहे, सार्वकालिक हो जाये। ऐसी सार्वकालिक अनुभूति तभी संभव होगी जब 'रस' योजना से और आगे बढ़कर 'विशेष रस' योजना होगी। इसी आशय से तुलसी ने लिखा —

राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं।।

(7/53/1)

तुलसी ने इसी उद्देश्य से मानस में उन देवी—देवताओं का स्मरण—वन्दन किया जो इसी विशेष रस के अभ्यासी हो चुके थे —

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती।।
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी।।

(1/108/7 तथा 1/19/6)

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।

(5/30)

उपर्युक्त प्रकार से वर्ण, अर्थ, रस, छन्द की कर्मी वाणी या सरस्वती हैं, ऐसा तुलसी का ही नहीं, शास्त्र का भी मत है। इनकी कृपा के बिना महाकवि बनना तो क्या, व्यक्ति सामान्य कवि भी नहीं बन सकता। सरस्वती की कृपा से ही वाल्मीकि आदि कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो गये (अवतार कथांक — गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ0 342)। वाणी का दूसरा गुण यह है कि वे निरन्तर राम गुणगान करती हैं 'नेति—नेति' कहते हुए —

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।

नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥

(1/12)

वस्तुतः 'नेति–नेति' वाली स्थिति सभी अधिकारी देवताओं की है– वेदों की है –

कछुक राम गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं सो कहहु भवानी॥

(7/52/7)

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

(तैत्तिरीय उपनिषद् 2/4)

वाणी प्रभु का गुणगान करने के लिए अग्रसर होती है, पर उसे अभीष्ट सिद्धि नहीं होती।

पर इस असमर्थता का अर्थ यह नहीं है कि ये तत्त्व मौन धारण कर लें – ये अपनी सामर्थ्य के अनुसार गुणानुवाद करेंगे ही –

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥

(1/13/1)

वेदान्त (उपनिषद्) स्वयं वाणी की विवशता या उपादेयता का उद्घोष इस प्रकार करता है –

यद् वै वाक् न अभविष्यत् न धर्मो न अधर्मो व्यज्ञापयिष्यत् न सत्यं न अनृतं न साधु न असाधु न हृदयज्ञो न अहृदयज्ञः। वाक् एव एतत् सर्वं विसापयति।

(वृह0 7/2/1–2)

यदि वाणी न होती तो धर्माधर्म, सत्यासत्य सदसद् तथा प्रिय–अप्रिय का ज्ञान संसार को न होता। वाणी ने ही सब कुछ ज्ञान कराया है।

सुस्पष्ट है, वाणी का व्यापार ही काव्य है। वाणी की तीसरी विशेषता यह है कि वे भगवान् श्रीराम के अवतार से संबंधित कार्य को सम्पन्न करातीं हैं। इसके लिए देवता भी उनकी स्तुति करते हैं –

देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी॥
नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नीद मास षट केरी॥

(2/12/2, 2/12 तथा 1/177/8)

भगवान श्रीराम के विवाह में 'लहकौरि' खिलाने का निर्देश वाणी द्वारा ही जनक किशोरी जी को किया जाता है –

लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।

(1/327/छंद)

कवि के लिए भी सरस्वती की कृपा वाँछनीय है। कवि के स्मरण करते ही वे तत्काल उसके हृदय में उपस्थित हो जाती हैं, परन्तु उन्हें प्राकृत जन का गुणगान प्रिय नहीं लगता, अतः वे पश्चात्ताप करती हैं –

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना।।
राम चरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ।।

(1/11/7 व 1/11/5)

भगवती सरस्वती का एक गुण यह भी है कि वे श्रोता तथा वक्ता दोनों के हृद्देश में स्थित अविवेक का हरण करतीं हैं, इसीलिए गोस्वामी जी प्रारम्भ में की गयी वन्दना में शारदा तथा गंगा का स्तवन करते हैं।

पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता।।
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका।।

(1/15/1–2)

यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि भगवती सरस्वती आसुरी संपत्ति वाले कवियों या मनुष्यों के प्रति अपने उक्त गुण का प्रकाशन नहीं करतीं, बल्कि अपने राक्षसी, भ्रान्ता आदि गुणों का आपेक्ष कर देती हैं, जिनसे उनका घोर अहित ही होता है –

ऋषयो राक्षसी माहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः।
सः योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य निष्कृतिः।।

(उत्तर रामचरित 5/3)

मुनिगण उन्मत्त एवं अभिमानी व्यक्ति की वाणी को 'राक्षसी' कहते हैं। ऐसी वाणी सब प्रकार के विरोधों तथा लोक–तिरस्कार की जननी है।

वाणी के अन्य दोष– वंचिता, भ्रान्ता तथा प्रतिबन्ध्या हैं। कैकेयी महारानी के प्रति प्रयुक्त मंथरा की वाणी वंचिता है।

वह वाणी कामधेनु तुल्य है जो सत्य, प्रियता से युक्त होकर शुद्ध, शांत तथा कल्याणदायी होती है।

श्रीमद्भगवत् गीता के अनुसार –

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

(17/15)

गोस्वामी जी चाहते थे कि उनका काव्य बुध जनों को विश्राम दे तथा सामान्य जन का अनुरंजन करे। इसके लिए वाणी की अनुकूलता या वंदना आवश्यक थी। **अतः ''वन्दे वाणी विनायकौ'' से मंगलाचरण प्रारंभ किया।**

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई

तुलसी मानस दर्शन (whatsapp group) से साभार

महर्षि याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि– हे भरद्वाज जी! श्रीराम जी जो करना चाहते हैं वही होता है तथा अखिल ब्रह्माण्ड में कोई ऐसा नहीं है जो राम जी की इच्छा के विरुद्ध कर सके। यहाँ एक बहुत गंभीर प्रश्न खड़ा होता है कि तो क्या श्रीराम जी संसार में देवर्षि नारद जी का उपहास कराना चाहते हैं। **'जगत मोर उपहास कराई'**, जी नहीं! राम जी के स्वभाव में ऐसा नहीं है कि वे किसी का भी उपहास कराने का प्रयास करें। इस संबंध में उनके चरित में असंख्य प्रमाण हैं। वस्तुतः राम जी नट नारद रूपी मर्कट को साथ लेकर एक मंदारी के जैसा खेल दिखाना चाहते हैं –

नट मरकट इव सबहिं नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत।।

(4/7/24)

वे नारद मोह और उनके शाप के बहाने आदर्श मनुज चरित की भूमिका तैयार करना चाहते हैं। इसे शिव जी भी नहीं समझ रहे हैं। यदि यह नारद मोह की नींव नहीं पड़ी होती तो उसके ऊपर रामचरित का ऊंचा और अद्वितीय महल कैसे खड़ा होता? शिव जी जब शिव रूप में हैं, उस समय नारद जी को आगे बढ़ने से रोक कर नारद जी का काम विजय कथा का पटाक्षेप करना चाहते हैं और जब वे हनुमान जी के रूप में हैं, उस समय भी बड़ी हड़बड़ी में लगते हैं –

सिंहनाद करि बारहिं बारा। लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा।।
सहित सहाय रावनहि मारी। आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी।।

(4/30/8–9)

तो जाम्बवंत जी कहते हैं कि– नहीं हनुमान! आप ऐसी भूल मत करना, बल्कि राम जी की इच्छा से थोड़ी सी भी दूरी न रखना, अन्यथा इस राम कौतुक में हम सभी को सौभाग्य वश जो भूमिका मिली है वह भी खतरे में पड़ जाएगी। इसलिए केवल सीता जी को देखकर और उनका समाचार लेकर आओ –

एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई।।

(4/30/11)

फिर क्या होगा?

तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना।

(4/30/12)

इस हेतु करोड़ों की संख्या में वानरी सेना जाएगी। कौतुक लागि –

कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।

त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥

(4/30/छंद)

लाभ क्या होगा? इस पावन रामचरित को जो सुनेंगे, जो गाएंगे, जो कहेंगे, जो मनन करेंगे, समझेंगे, वे सभी परम पद को प्राप्त करेंगे।

जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

(4/30/छंद)

इसलिए राम जी की इच्छा देवर्षि नारदजी का उपहास कराना नहीं, बल्कि रामचरित की नींव रखना है। राम जी को यदि नारद जी का उपहास कराना होता तो उन्हें जो बंदर का मुँह दिया उसे दो शिव गणों और शीलनिधि की कन्या विश्वमोहिनी के अलावा किसी और की भी जानकारी में दे देते न? पर ऐसा नहीं हुआ –

सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। नारद जानि सबहिं सिर नावा॥
काहुँ न लखा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृपकन्याँ देखा॥

(1/133/8 तथा 1/134/7)

अतः राम जी ने देवर्षि नारद जी का उपहास करने के लिए ऐसा नहीं किया और हमें भी इसे नारद जी की मूर्खता के रूप में प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। क्योंकि –

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥

(1/128/1)

राम जी की इच्छा सर्वोपरि है और उचित भी यही है कि हम प्रभु इच्छा में अपने को सम्मिलित कर लें।

हनुमान तो हनुमान हैं अद्भुत और अनन्य हैं,
शक्ति-भक्ति और विनय के मूर्तिमंत पर्जन्य हैं!
भाव विभोर हृदय से, जिसने तुमको याद किया,
बिना विलंब दौड़ पड़े तुम, दाता जग में धन्य हैं!
हे पूज्य! क्षण वो याद करें जब जाम्बवंत ने याद दिलाया,
तुम तेजवान हो, बुद्धिमान हो, शक्तिमान हनुमान हो!
बाल सूर्य से उदित हो उठो मेरे मन के दिव्य गगन में!
राम नाम की प्रतिध्वनि से गुंजित हो छोटा सा जीवन!
विषयों के दशकंधर की विषम अशोक वाटिका में कब से कैद पड़ी
मेरी जीवात्मा तड़प रही है, कृपा करो हनुमत वीर!
इस लंका से मुक्त करा दो, शरण गहूँ रघुवीर!!

बँदउँ अवध भुआल

तुलसी मानस दर्शन (whatsapp group) से साभार

बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥

(1 / 16)

अर्थात् मैं श्री अवध के राजा की वन्दना करता हूँ जिनका श्रीराम जी के चरणों में ऐसा सच्चा प्रेम था कि दीनदयालु भगवान के बिछुड़ते ही अपने प्यारे शरीर को उन्होंने तिनके के समान त्याग दिया।

व्याख्या – 'सत्य प्रेम जेहि राम पद' तुलसी बाबा यहाँ बताते हैं कि श्रीरघुनाथजी में सच्चा प्रेम क्या है? सच्चा प्रेम वही है कि जब वियोग से हृदय में विरहाग्नि ऐसी प्रज्वलित हो कि जीवन पर आ बने, उससे मरण अथवा मरणासन्न दशा प्राप्त हो जाए। यदि ऐसा न हुआ तो फिर सच्चा प्रेम कहना व्यर्थ है। देखिए तुलसी बाबा दोहावली में कहते हैं कि सच्चा प्रेम तो 'मीन' का है, क्योंकि 'जल' से बिछुड़ते ही उसके प्राण निकल जाते हैं। यथा –

मकर उरग दादुर कमठ, जल जीवन जल गेह।
तुलसी एकै मीन को, है सांचिलो सनेह॥

अर्थात् मगर, सर्प, मेंढ़क, कछुए सबही का जल में घर है, परन्तु सच्चा स्नेह जल से एक मछली का ही है जो जल से बाहर रह ही नहीं सकती, तुरन्त मर जाती है।

इसी तरह संसार में प्रायः सभी कहते हैं कि 'प्रभो! आप हमारे जीवन हैं, प्राणप्यारे हैं।' पर कितने मनुष्य ऐसे हैं जिनका यह वचन हार्दिक होता है? जो वे कहते हैं उसे सत्य कर दिखाते हैं? जब अवधवासियों को विछोह हुआ तब वे अपने प्रेम को धिक्कारते थे, कहते थे कि हमारा प्रेम झूठा है –

निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना॥

(2 / 86 / 5)

यह उपदेश है कि सच्चे प्रेमी बनना है तो ऐसा ही प्रेम करो। 'अवध भुआल'– मनु को जब श्रीरामजी ने दर्शन दिया था, तब मनुजी ने यही वर माँगा था कि –

चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥

(1 / 149)

प्रभु ने एवमस्तु कहा और बोले कि –

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई।।

(1 / 150 / 2)

उसी समय सतरूपा जी ने भी यही वर पाया –

जो बरु नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा।।

(1 / 150 / 4)

जब दोनों को मन–माँगा वर मिल चुका तब –

बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक बिनती प्रभु मोरी।।
सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ।।
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना।।
अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ।।

(1 / 151 / 4–7)

प्रभु ने तब यह कहा था कि –

होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत।

(1 / 151)

इस कारण से पहले रानियों सहित वन्दना करते हुए प्रथम वर के अनुसार केवल राम जी के माता–पिता कहा। दूसरी बार दूसरे वचन के अनुसार दुबारा वन्दना में प्रभु के श्रीमुखवचन के अनुसार 'अवध भुआल' कहकर उसी के साथ 'मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना' का सत्य होना दिखाया। दशरथ जी का यह प्रेम अनूठा था और ऐसा वरदान भी केवल दशरथ जी ने ही माँग कर पाया था। रामपद का भाव यह कि दशरथ जी का श्रीराम में वात्सल्य भाव था। इस भाव में चरणारविन्द का ध्यान नहीं होता, परन्तु यहाँ 'रामपद' में सत्य प्रेम होना कहा है। इसका कारण यह है कि दशरथ जी ने वर माँगा था कि 'सुत विषइक तव पद रति होऊ।' वरदान के अनुसार यहाँ तुलसी बाबा ने 'रामपद' दिया।

'बिछुरत दीनदयाल' कहने का तात्पर्य यह है कि मनु रूप में तप के समय दशरथ जी को दीन देखकर प्रभु ने बड़ी दया की थी। पुनः बिछुड़ने का हेतु दीनदयालुता है। दीनों पर दया करके बिछुड़े थे। राक्षसों के कारण सुर, सन्त– सब दुःख से दीन हो रहे थे, उनको मारकर इनका दुःख हरने के लिए श्रीरामजी ने पिता का वियोग स्वीकार किया। ऐसा दीनों पर दयालु कौन होगा? इससे यह पाया जाता है कि राजा उनको देखकर जीते थे – 'जीवन मोर दरस आधीना।'

यहाँ 'मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना' ये वचन सिद्ध हुए। 'प्रिय तन' तन को प्रिय कहा क्योंकि इसी तन में परब्रह्म श्रीराम जी दशरथ जी के पुत्र हुए। भुशुंडि जी ने गरुड़ जी से कहा –

राम भगति एहिं तन उर जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी।।

(7/96/4)

और दशरथ महाराज के तो श्रीरामचन्द्र जी पुत्र ही हुए फिर यह 'तन' 'प्रिय' क्यों न हो? अपनी देह सभी को प्रिय होती है, जैसा दशरथ जी महाराज ने विश्वामित्र जी से कहा –

देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं।।

(1/208/4)

श्रीहनुमान जी ने भी रावण से यही कहा –

सब कें देह परम प्रिय स्वामी।

(5/22/4)

इसलिए तुलसी बाबा ने तन को 'प्रिय' कहा। 'तृन इव' कहने का भाव यह है कि तिनका फेंक देने में किसी को मोह नहीं होता, उसी तरह दशरथ जी ने अपने शरीर पर ममत्व किए बिना ही शरीर त्याग दिया–

सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा।।

(2/155/6)

यहाँ राम विरह अग्नि है। यथा – **बिरह अगिनि तनु तूल समीरा।** (5/31/7) इसलिए राम विरह में तृन इव तन त्यागना कहा। तृण किसी को प्रिय नहीं होता, तन सबको प्रिय होता है। रामजी के संबंध में 'तन' प्रिय है और रामजी के बिछुड़ने से यह शरीर 'तृण के समान' है –

राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही।।

(7/96/3)

यहाँ लोग शंका करने लगते हैं कि बिछुड़ते ही तो तन का त्याग नहीं हुआ फिर यहाँ तुलसी बाबा ने 'बिछुरत' कैसे कहा? श्रीरामजी के पयान–समय से लेकर सुमंत्र जी के लौटने तक जो दशा राजा की वर्णित है, उसका पूरा प्रसंग पढ़ने से यह शंका स्वयं ही निर्मूल जान पड़ेगी। श्री दशरथ जी ने सुमन्त्र जी को राम जी के साथ भेजा था –

'लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू।' 'रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरहु गएँ दिन चारि।
'फिरइ त होइ प्रान अवलंबा।' नाहिं त मोर मरनु परिनामा।'

(2/81/8, 2/81 तथा 2/82/6–7)

इन वचनों से विदित होता है कि दशरथ जी को पूर्ण विश्वास था कि सुमन्त्र जी उनको लौटा लावेंगे।

ऐसा भरोसा होते हुए भी वे 'मनि बिनु फनि' के तुल्य जीवित रहे, जब तक सुमन्त्र जी नहीं लौटे –

जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा।।

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई।।

(2/148/4 तथा 2/149/1)

जब सुमन्त्र जी ने आकर हाल कहा तब –

परेउ धरनि उर दारुन दाहू।
प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू।।
राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम।।

(2/153/5, 2/154/1 तथा 2/155)

दूसरा प्रश्न लोग फिर यह करते हैं कि 'जब विश्वामित्र जी के साथ श्रीरामजी गए थे तब भी तो विछोह हुआ था, तब शरीर क्यों नहीं त्यागा? इसका समाधान यह है कि राजा ने विश्वामित्र जी में अपना पितृत्व धर्म (अर्थात् राम जी के प्रति वात्सल्यभाव को) स्थापित कर दिया था –

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ।।

(1/208/10)

एक बार करतल बर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना।।

यहाँ प्रयुक्त 'एक बार' और 'गान प्रबीना' शब्द इतिहास के उस पन्ने की ओर संकेत कर रहे हैं जब देवर्षि नारद जी संगीत कला के जानकार नहीं थे और उनके बेसुरे राग पर लक्ष्मी जी को हँसी आ गई थी। नारद जी को लक्ष्मी जी के आदेश से उस संगीत मंडली से बाहर किया गया था और नारद जी ने लक्ष्मी जी को पृथ्वी पर अवतरित होने का शाप दे दिया था। इस घटना को बीते हुए कुछ दिन हो गये थे और इसी बीच काम-विजय प्रसंग भी आ गया। इसलिए बहुत दिन हो गए थे 'बहुते दिनन्ह' कीन्ह मुनि दाया। उस बार आप क्रोध में थे लेकिन इस बार आप बड़े प्रेम में गुण गायन करते हुए बड़े ही प्रसन्न भाव से पधारे हैं। यहाँ प्रयुक्त 'एक बार' शब्द भी आगे घटित होने वाली ऐतिहासिक घटना की ओर संकेत करता है कि पिछली बार सीता अवतार की भूमिका तैयार की थी तो इस बार रामावतार की भूमिका तैयार होने वाली है। इसलिए 'एक बार' करतल बर बीना और गावत हरि गुन गान प्रबीना। अद्‌भुत रामायण के इस गूढ़ रहस्य को गोस्वामी जी ने 'एक बार' और 'गान प्रबीना' से मानस पटल पर रख दिया कि अब नारद जी संगीत की कला में पारंगत होने के बाद ही आ रहे हैं, अतः एक तो काम पर विजय का अभिमान और ऊपर से अब संगीत में पारंगत होने का भी अभिमान अर्थात् करेला और नीम चढ़ा से दोहरे कड़वापन वाला हो गया है।

प्रशंसा संबंधी विवादों पर पूज्यपाद गोस्वामीजी का संदेश

प्रशंसा अवश्य होगी। वह मीठा जहर ही नहीं है अपितु अमृत भी है, पर हम उस प्रशंसा को जिस रूप में ग्रहण करते हैं यही हमारी परीक्षा है। प्रशंसा कल्याणकारी भी हो सकती है और प्रशंसा विनाशकारी भी हो सकती है। जैसे अंगूर खाने से सात्विकता की वृद्धि होगी, स्वस्थता बढ़ेगी, किन्तु उसी अंगूर से बनी यदि शराब पियें तो नशा होगा, तामसिक वृत्ति बढ़ेगी। यही दोनों में अंतर है। अंगूर सतोगुणी है तो सुरा तमोगुणी। इसी प्रकार से प्रशंसा के भी दो रूप हैं।

तुलसीदास जी की चारों ओर बड़ी प्रशंसा हो रही है, कोई उन्हें वाल्मीकि जी का अवतार कह रहा है तो कोई सिद्ध संत कह रहा है। भगवान ने उनसे पूछा कि 'तुलसी! तुमको कैसा लग रहा है? गोस्वामी जी ने उत्तर दिया कि समस्या मेरे लिए नहीं, बल्कि आपके लिए है। मेरी तो प्रशंसा करते हैं, वे मुझे आपसे जोड़कर प्रशंसा करते हैं कि 'तुलसी तो राम का दास है' तब या तो आप मुझे सचमुच वैसा बना दीजिए, जैसी प्रशंसा हो रही है। कवितावली में उन्होंने लिखा –

लोग कहैं, अरु हौंहु कहौं, जनु खोटो-खरो रघुनायक हीको॥
रावरी राम! बड़ी लघुता, जसु मेरो भयो सुखदायक हीको॥
कै यह हानि सहौ, बलि जाउँ, कि मोहू करौ निज लायक हीको॥
जानि हियैं हित जानि करौ, ज्यों हौं, ध्यानु धरौं धनु-सायक हीको॥

(कवितावली 7/59)

अर्थात् या तो जैसी प्रशंसा हो रही है, मुझे उसके अनुकूल बना दीजिए और यदि नहीं बनाते हैं तो इससे जो आपको कलंक मिलेगा, उसे लेने के लिए तैयार रहिए। लोग कहेंगे कि राम के सेवक भी क्या ऐसे हुआ करते हैं? इसका अभिप्राय यह है कि प्रशंसा सुनकर उसे भगवान की प्रशंसा हो रही है, प्रशंसी को ऐसी प्रवृत्ति बनानी चाहिए। जैसे हम भोजन सीधे नहीं करते 'प्रभुहिं निवेदित भोजन करहीं।' उसे भगवान को अर्पित कर दें और तब ग्रहण करें, तो हमने भोजन का स्वाद नहीं लिया, प्रसाद का आनंद लिया। प्रशंसा सुनकर भी यदि हमारे अंतःकरण में ईश्वर के प्रति कृतज्ञता की भावना उदित हो कि यह तो प्रभु कृपा का ही फल है तो प्रशंसा भी कल्याणकारी हो सकती है। परन्तु जैसे सुरा पीकर व्यक्ति वास्तविकता को भूल जाता है, वैसे ही प्रशंसा सुनकर व्यक्ति यदि वास्तविकता को भूलकर मतवाला हो जाये, अभिमानी हो जाये तो वह सीधे मार्ग पर नहीं चल सकता।

प्रशंसा गुणों की होती है, जो केवल ईश्वर के गुण होते हैं। वह असीम है। ससीम के गुण–दोष तो परिवर्तनीय होते हैं, अस्थाई होते हैं। व्यक्ति में अगर गुण दृष्टिगत होते हैं, तो वे ईश्वर के गुणों के ही प्रतिबिम्ब होते हैं, जैसे घड़े में चंद्रमा का बिम्ब।

श्रीरामचरितमानस राष्ट्रीय समिति (पंजीकृत)

स्थानीय कार्यालय, ए-447, सेक्टर-47, नोएडा-201 301

दूरभाष : 0120-4305457, 9811056467

वित्तीय वर्ष 2018 - 2019 का आय/व्यय विवरण (राशि भारतीय रुपयों में)

क्र.सं.	आय विवरण	रुपए	क्र.सं.	व्यय विवरण	रुपए
1.	वर्ष के प्रथम दिन की स्थिति		1.	स्मारिका छपाई व्यय	55,950.00
	(क) मियादी जमा खाता	2,70,000.00			
	(ख) बैंक में बचत खाता	77,367.90			
	(ग) नकद राशि	4,549.00			
	(घ) प्रतिभूति वापसी	5,000.00			
2.	स्मारिका में विज्ञापन से प्राप्त राशि	40,000.00	2.	स्रोत पर आयकर	2,514.00
3.	दान/आरती/मानस पाठ तथा सदस्यता शुल्क से प्राप्त राशि	1,64,136.00	3.	श्रीरामनवमी उत्सव एवं श्रीराम कथा आयोजन पर व्यय	23,472.00
4.	अन्य प्राप्तियाँ, बैंक ब्याज आदि	31,584.00			
5.	आयकर वापसी आवेदित	2,514.00	4.	टेलीफोन बिलों का भुगतान	10,570.37
			5.	विविध व्यय (बैंक चार्ज सहित)	7,455.00
			6.	दान	5,501.00
			6.	वर्ष के अंतिम दिन की स्थिति	
				(क) मियादी जमा खाता	3,97,000.00
				(ख) बैंक में बचत खाता	34,281.53
				(ग) नकद राशि	53,407.00
				(घ) प्रतिभूति रिफण्ड	5,000.00
	कुल योग	5,95,150.90		कुल योग	5,95,150.90

पं0 दिनेश चन्द्र शर्मा	डॉ0 भगवान दास पटैरया	श्री जे.के. गुप्ता	श्री सुभाष मित्तल	चार्टड
अध्यक्ष	महा सचिव	कोषाध्यक्ष	कार्यकारी सदस्य	लेखाकार